P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-2* * (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पूर्वमध्यकाल में भूमि–अनुदान

स्वेता
शोधार्थी,
इतिहास विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

सारांश

भूमि–अनुदान विशेष रूप से ऐसे आलेख है जो पत्थर या तांबे की पट्टिका पर उत्कीर्ण होते हैं। यद्यपि गुप्तकाल की स्मृतियों में यह संकेत किया गया है कि अनुदान नाशवान सामग्री जैसे कपड़ा और भुर्जपत्र आदि पर लिखे जाते थे, वे हमारे समय तक बचे नहीं रह सके हैं। अभिलेखीय साक्ष्य के आधार पर पहले– पहल भूमि प्रथम शताब्दी ई॰पू॰ दक्कन में सातवाहनों ने जारी किये थे, उनके समसामयिक कुषाणों ने नहीं। यद्यपि विदेशी शासक होने के कारण कुषाणों के लिए अच्छा मौका था कि वे अपने अनुयायियों तथा बौद्ध धर्म के समर्थकों को विजित प्रदेश के कुछ हिस्से इनाम की तरह बांटते। दक्कन अनुदानों के बाद महाभारत में चौथी–पांचवी शताब्दियों के दौरान गुप्त सामन्तों ने बड़े पैमाने पर ये अनुदान जारी किये। हर्ष और उनके बाद आरम्भिक मध्यकालीन राजवंशों के अनेक शासकों ने व्यापक स्तर पर भूमि अनुदान किये।

मुख्य शब्द : सामन्तीकरण, क्षेत्रीय करण, कुलीनतंत्र, कृषक वर्ग।

प्रस्तावना

पूर्वमध्यकालीन भारत के सामाजिक, आर्थिक इतिहास में भूमि अनुदानों का एक महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल से मध्य युग में संक्रमण को शांतिपूर्ण ढंग से भूमि–अनुदानों ने प्रभावित किया। मौर्य साम्राज्य के राज्य–नियंत्रित अर्थव्यवस्था को सामंती अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने का श्रेय भूमि अनुदानों को ही प्राप्त है। ऐसा माना जाता है कि भू–सम्पत्ति वाले कुलीनतंत्र को उत्पन्न करने वाले भूमि अनुदानों ने राजनीतिक शक्ति को विभाजित किया। कृषक वर्ण को नीचे गिराया और अन्ततः तुर्कों द्वारा भारत विजय का मार्ग प्रशस्त किया। सामंतीकरण, ग्रामीणीकरण, क्षेत्रीयकरण और गतिहीनता एवं पिछड़ापन एक अकेले घटक से उत्पन्न माना जाता है और वह है भूमि–अनुदान।

साहित्यावलोकन

प्रथम शताब्दी ई०पू० सातवाहनों द्वारा जारी किए गए भूमि अनुदान के फलस्वरूप मध्यभारत में चौथी–पाँचवी शताब्दियों के दौरान गुप्त सामन्तों ने बड़े पैमाने पर जारी किए। पूर्व मध्यकाल तक आते–आते भूमि अनुदानों का प्रचलन और भी ज्यादा हो गया जिसके फलस्वरूप सामंतवाद उभर कर सामने आया। इन भूमि अनुदानों ने उस समय के आर्थिक व सामाजिक ढ़ाँचे में अनेक परिवर्तन किए और राज्य नियन्त्रित अर्थव्यवस्था को सामंती अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर दिया। भूमि अनुदानों ने सामंतीकरण क्षेत्रीयकरण, उपसामंतीकरण एवं किसान विद्रोह को जन्म दिया। प्राचीन भारतीय इतिहास में भूमि अनुदानों पर अनेक इतिहासकारों ने अपने विचार दिए है जिनमें आर०एस० शर्मा अपनी पुस्तक 'भारतीय सामंतवाद' में सामन्तवाद के उदय के लिये भूमि अनुपानों को उदरदायी मानते है। इसी संदर्भ में चतुर्वेदी अंशुमाली ने अपने शोध ''पूर्वमध्यकालीन भारत में भूमि अनुदान और किसान वर्ग' में भूमि अनुदानों के कारण व परिणामों पर प्रकाश डाला है।

शोध–विधि

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीय स्त्रोतों में प्रस्तुत तथ्यों पर आधारित है। इसके बारे में शोध–सामग्री अधिकांश रूप से संदर्भ पुस्तकों से ली गई है और शोधकार्य को गति देने के लिए अनुभाविक तथ्यों का प्रयोग भी हुआ है। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक व वर्णनात्मक विधियों को अपनाया गया है।

शोध के उद्देश्य

1. पूर्वमध्यकालीन भारत की संस्कृति के बारे में जानना।
2. पूर्वमध्यकाल में भूमि अनुदानों के बारे में जानना।
3. पूर्वमध्यकाल में भूमि अनुदानों के कारण व इसके परिणामों को जानना।
4. पूर्वमध्यकाल में आए आर्थिक परिवर्तनों को समझना।

भूमि अनुदान के कारण

राज्य द्वारा भूमि–अनुदान देने के कारणों में गुप्त साम्राज्य का विघटन रोम के साथ समुद्री व्यापार में अवरोध एवं फलस्वरूप बहुमूल्य धातुओं एवं सिक्कों की कमी थी। इसके अतिरिक्त मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद राज्य नियंत्रित मौर्यों की उत्पादन व्यवस्था भी ध्वस्त हो गई थी। अतः राज्य कर्मचारियों को वेतन के बदले भूमि अनुदान दिये जाने लगे और भूमि को सैनिक व्यवस्था में लाना पड़ा।

किन्तु वास्तविक रूप से प्राप्त प्रशासनिक एवं सैनिक भूमि दान बहुत कम है। भूमि अनुदानों से राजा की आय का विचार एवं विरोधाभासी लग सकता है, किन्तु यह व्यवस्था यूरोप में भी प्रचलित थी। जैसा कि मार्क ब्लॉक ने सुझाव दिया है। डी॰सी॰ सरकार के अनुसार, "धार्मिक परम्परानुराग भूमि–अनुदान 5/6 भाग पुण्य अनुदाता को मिलता था और 1/6 भाग पुण्य राजा को जाता था जो अनुदान की आज्ञा प्रदान करता था। भले ही ऐसा वह इसका मूल्य पाने पर करता था। मिताक्षरा में भी उल्लेख मिलता है कि अचल सम्पत्ति के विक्रय पर प्रतिबंध होने के कारण बेची गई भूमि को पवित्र अनुदान के रूप में सुवर्ण एवं जल के साथ प्रस्तुत किया जाये।

किन्तु जैसा कि प्रारम्भिक बंगाल के अधिकार पत्रों एवं भूमि अनुदानों से पता चलता है। प्रारम्भ से ही भूमि दानों का लक्ष्य धार्मिकता को प्रोत्साहन था। प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा दिये गए ये प्रारम्भिक अनुदान यह भी स्पष्ट करते हैं कि राज्य सीधे परती भूमि को अनुदान भोगियों को रियायती दर पर बेच देता था। कभी–कभी अनुदान भोगी सीधे आवेदन करता था और बिना किसी मध्यस्थ अनुदानकर्त्ता के उसकी प्रार्थना स्वीकृत कर दी जाती थी। इन सभी अनुदानों में राजा व्यवहारिक रूप से लाभान्वित था। यदि राजा स्वयं सीधे नहीं बेचता था तो विक्रय की अनुमति लोगों को देता था। राजाओं, सहायक शासकों और राज्य कर्मचारियों द्वारा दिये गये अनुदान प्रायः उनके स्वामियों से खरीदे गये थे।

भूमि–अनुदानों के उदय के संदर्भ में ऐसा माना जाता है कि रोम के विश्व व्यापारिक व्यवस्था के पतन के साथ पूर्वमध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था में भी प्रमुख आर्थिक परिवर्तन हुए जिससे ढले सिक्कों में अत्यधिक कमी, व्यापार एवं उद्योग के कार्यों में पतन, उद्योग एवं वाणिज्य के केन्द्र के रूप में शहरों का पतन और साथ ही सामंती अर्थव्यवस्था का आगमन हुआ।

इन भूमि अनुदान का प्रमुख कारण आर्थिक एवं सांस्कृतिक विस्तार की भावना प्रतीत होती है। सैनिक सेवा एवं स्वामिभक्तिपूर्ण सेवा भी धार्मिक एवं लौकिक अनुदानों के कारण थे। कभी–कभी ब्राह्मण अनुदान भोगी लौकिक शासक के रूप में विकसित हो जाते थे एवं स्वामी सेवक के सामंती बंधन में बंध जाते थे। बृहस्पति स्मृति के अनुदान सैनिक एवं अन्य सेवाओं के लिए दिये जाते थे। लेखपद्धति में राजाओं द्वारा रानकों को एवं रानकों द्वारा राजपुत्रों को भूमि अनुदान देने के उल्लेख है, जिनसे उपसामंतीकरण के प्रमाण मिलते हैं।

कुछ विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि बंगाल तथा भारत के अन्य भागों में भूमि–अनुदान की जो प्रथा थी वह केवल खेती वाली भूमि और ग्रामीण बस्तियों तक सीमित नहीं थी। उत्तरी और पूर्वी बंगाल के कुछ भूखंडों और मध्य प्रदेश के कुछ गांवों के संदर्भ में यह बात सच हो सकती है, किन्तु गंगा द्रोणी, गुजरात और महाराष्ट्र में सामान्यता बसे हुए गांव और कृषि वाली भूमि ही दान में दी जाती थी। कई मामलों में पुरोहितों को अनुदान में गांव देने की सूचना ब्राह्मणों तथा अन्य ग्रामवासियों को दे दी जाती थी। इससे यह पता चलता है कि ब्राह्मणों को गांव में अग्रणी कृषकों के रूप में दाखिल नहीं किया गया थ। पुनः गाँव और कृषि क्षेत्र, उदूंग और उपरिकर के साथ दे दिये जाते थे। जिनमें सभी प्रकार की देयताएँ शामिल थी। साथ ही किसी भी तरह की भेंट, बेगार तथा विशेषाधिकार से वे मुक्त थे और सैनिक या सिपाही भी उनमें प्रवेश नहीं करते थे। इस तथ्य से यह संकेत मिलता है कि ये क्षेत्र बसे हुए थे। इस युग के अधिकतर भूमि–अनुदानों में अपहत, खिल, भूमिच्छिन्याय परम्परागत अर्थ में ही प्रयोग किया गया था।

भूमि अनुदान के परिणाम

देश के कुछ भागों में भूमि–अनुदान की प्रथा के परिणामस्वरूप भूमि का विखण्डन हुआ। उत्तरी बंगाल में डेढ़ कुल्यवाय भूमि भी चार अलग–अलग स्थानों पर छोटे–छोटे भूखंडों के रूप में खरीदनी पड़ी। इसका कारण यह हो सकता है कि लोग अपनी भूमि से अलग नहीं होना चाहते थे। किन्तु इससे यह संकेत भी मिलता है कि भूमि की कमी थी और इस पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा था।

चूंकि ब्राह्मणों के पास अनेक भूखंड थे। अतः वे उन पर स्वयं खेती नहीं कर सकते थे और उनका ऐसा करना सर्वथा वैध था। हस्तांतरण की शर्तों से यह स्पष्ट होता है कि अनेक संदर्भों में अनुदान में प्राप्त भूमि पर ब्राह्मण स्वयं खेती नहीं करते थे। उन पर खेती अल्पकालिक किसान करते थे। इस प्रकार

धार्मिक अनुदान की बदौलत पुरोहित और मंदिर अपने अस्थायी असामियों से लगान वसूल कर सकते थे, किन्तु उस पूरी राशि को अपने भरण–पोषण के लिए रखते थे। उसका कोई भी भाग राजस्व के रूप में राजकोष में जमा नहीं करते थे, जबकि जागीरदारों और जमींदारों को कुछ अंश जमा कराना होता था।

अतः हम ऐसे वर्ग को उभरते हुए देखते हैं जिनके पास सामंती सम्पत्ति थी और साथ ही सामंती थी और सामंती अधिकार भी ऐसे जमींदार इससे पहले किसी भी चरण में नहीं मिलते। बुद्ध के काल में हम कुछ सम्पन्न जमींदारों के बारे में सुनते हैं, किन्तु वे दासों या खेतीहर मजदूरों के श्रम से अपने फार्मों की व्यवस्था करते थे। मौर्य पूर्व और मौर्यकाल में हमें कुछ ऐसे ब्राह्मण दिखाई देते हैं जो गांवों के राजस्व का उपयोग करते थे। किन्तु गुप्त और गुप्तोत्तर काल में भूमि अधिकारपत्रों द्वारा बड़ी–बड़ी भूसंपदा वाले बड़े वर्ग का निर्माण हुआ जिसे न केवल कर वसूल करने का वरन् कानून और व्यवस्था स्थापित करने का भी अधिकार था। इन लाभ भोगियों का धार्मिक वर्ग बहुत शक्तिशाली हो गया क्योंकि आध्यात्मिक एवं वैचारिक तंत्र पर अपने नियंत्रण के अलावा उन्हें राजकोषीय, आर्थिक और प्रशासनिक अधिकार भी मिल गए।

भूमि–अनुदानों का एक अन्य परिणाम था, जमीन पर कृषक वर्ग के अधिकार का दारण और साथ ही जंगलों, चरागाहों, मछली पकड़ने, जलाशयों आदि पर सामूहिक अधिकारों में कमी। जनजातीय क्षेत्रों और पुराने जातिप्रधान क्षेत्रों, इन दोनों में ही कृषक वर्ग की स्थिति दासों जैसी हो गई। उन्हें वेतन भोगियों के साथ ही स्थानांतरित कर दिया गया। इसी वजह से ये कृषक वर्ग की स्थिति में गिरावट आई मौके पर मौजूद होने की वजह से ये लाभयोगी किसानों का ज्यादा कारगर ढंग से शोषण कर सकते थे। साथ ही विभिन्न सामूहिक स्त्रोतों जैसे जलाशयों, नदियों, जंगल, पेड़–पौधों में अनाधिकार हस्तक्षेप कर सकते थे। इन चीजों का गांव वाले अब तक बेरोक–टोक उपभोग करते थे।

भारतीय सामंतवाद का प्रमाण चिन्ह या जमींदारों के विशाल फार्मों या जागीरों का अभाव और छोटे स्तर के किसानी उत्पादन की प्रधानता किसान अपने भूखंड पर क्या उत्पादन करें, यह जितना उसकी आजीविका की जरूरतों से निर्धारित होता था, उतना ही लाभभोगियों की कर की मांग से। यहाँ इस बात पर बल देने की जरूरत है कि यूरोप तथा भारत दोनों जगह हमेशा विद्यमान लाभयोगी लोग किसानों से सभी तरह के करों की मांग करते थे। ऐसा ही उन्हें जारी किये गए राजकीय अधिकारपत्रों के बल पर करते थे। अतः नवोदित जमींदारों और स्थापित किसानों के बीच टकराव और खींचातानी लाजिम थी। किन्तु कुल मिलाकर धार्मिक तथा वैचारिक प्रचार के द्वारा कृषक असंतोष को संयत कर लिया जाता था। इसके बावजूद यदि किसान यह महसूस करते थे कि स्थिति असहनीय हो गई है तो वे किसी परती भूमि वाले क्षेत्र में जा सकते थे और नए गांवों की स्थापना करके उत्पादन की मौजूदा इकाईयों में वृद्धि कर सकते थे। शायद भूमि का अधिकार भाग ऐसे मुक्त किसानों के अधिकार में बना रहा जो सीधे–सीधे राज्य को लगान अदा करते थे। उपज का निश्चित भाग राज्य को नियमित कर के रूप में देने के अलावा, किसानों पर विविध प्रकार के अन्य कर भी लगाए जाते थे। जैसे उद्रंग (सीमाकर), उपरिकर। उपरिक पदनाम के मंडल अधिकारी को दिया जाने वाला कर और हिरण्य (नकदकर) इन सबसे निःसंदेह किसानों की स्थिति में गिरावट आई।

स्थानीय अधिकारी धीरे–धीरे आर्थिक सत्ता ग्रहण करतेजा रहे थे। वात्स्यायन से हमें यह जानकारी मिलती है कि किसानों की औरतों को गांव के मुखिया अनाज भण्डारों को भरने, चीजों को घर के अंदर ले जाने, उसके खेतों में कम करने आदि के लिए विवश किया जाता था। उपयुक्त भूमि अनुदानों एवं सामंती अर्थव्यवस्था में भू–स्वामियों तथा पराधीन किसानों के दो अलग–अलग वर्ग भारत में सामंतवाद की विशेषता थे। ये दोनों जिस अर्थव्यवस्था में रहते थे वह मुख्यतः कृषि पर आधारित थी। पूर्व मध्यकाल में किसान द्वारा किसान का शोषण होता था, किन्तु असंख्य जातियों में विभाजित होने के कारण वे एकजूट नहीं हो सके। कर्मकाण्डीय भेदभाव ने शोषण की वास्तविकता को सही रूप से सामने नहीं आने दिया।

निष्कर्ष

भूदान पत्रों के अध्ययन से इस बात में संदेह नहीं रह जाता कि सामान्यतः उत्पादन के साधनों पर भूस्वामी का अच्छा खासा नियंत्रण था। भूस्वामी किसानों से विभिन्न प्रकार के करों की मांग करतेथे। सामंती संरचना प्रभुत्वशाली भूस्वामी वर्ग तथा पराधीन कृषकवर्ग की बुनियाद पर खड़ी होती हैं। उसके शीर्ष पर पर राजा आसीन होता है, जो राजसत्ता का प्रतीक होता है और यह सत्ता मुख्य रूप से भूस्वामी वर्ग पर अवलम्बित रहती है, किन्तु न तो भूस्वामी वर्ग के सभी सदस्यों की आर्थिक–स्थिति समान होती है और न ही कृषक समुदाय के सभी लोगों की। इन दोनों वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध जागीरों तथा उपसामंतीकरण की प्रक्रिया से निर्धारित होते हैं। उपसामंतीकरण से नियमित श्रेणी विन्यास का जन्म होता है। इसमें राजा सबसे ऊपर होता है और सबसे नीचे किसान वर्ग जो पराधीन थे। इस प्रकार इन भूमि अनुदानों का सबसे अधिक प्रभाव किसान वर्ग पर पड़ा। वे भूस्वामियों के दास बनकर रह गए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ओमप्रकाश, अर्ली इंडियन लैंड गान्ट्स एंड स्टेट एकानोमी, इलाहाबाद, 1988।*

2. *शर्मा, आर॰एस॰, अर्बन डिके इन इण्डिया, दिल्ली, 1973*
3. *शर्मा, आर॰एस॰, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली, 1997।*
4. *यादव, वी॰एन॰ एस॰, सोसायटी एंड कल्चर, इलाहाबाद, 1973।*
5. *हबीब इरफान, भारतीय इतिहास में मध्यकाल, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1963।*
6. *लेखपद्धति, जी॰ओ॰एस॰, 1925, पृ॰ 7*
7. *अर्थशास्त्र, कौटिल्य, सम्पादक, आर॰ रामशास्त्री, मैसूर, 1919, टीका, आर॰पी॰ कांगले, द कौटिल्य अर्थशास्त्र, 3 खण्डो में, 1960–63*
8. *कौशाम्बी, डी॰डी॰, एन इंट्रोडक्शन ऑद द स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, 1956*
9. *सरकार, डी॰सी॰, लैंड सिस्टम एंड फयूडलिज्म इन एंशियंट इण्डिया, कलकत्ता, 1965*
10. *नारदस्मृति, XIII] 38*
11. *मनुस्मृति, पं॰ रामतेज पाण्डेय द्वारा सम्पादित, संस्करण–2, काशी, वि॰स॰ 2004*